वे यों स्कूल जाते हैं !

❑ पी. साईंनाथ

दलितों में भी दलित वाल्मीकि (मेहतर) समुदाय की शैक्षिक स्थिति उत्तर-भारत में सबसे बदतर है । दुनिया हल्ला-गुल्ला मचाती इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर गयी है जबकि वाल्मीकि स्त्रियां आज भी सिर पर मैला ढोने जैसी शर्मनाक और अमानवीय प्रथा से मुक्त नहीं हो पायी हैं । आजादी की स्वर्ण जयंती तक इस प्रथा के उन्मूलन की सरकारी घोषणाएं खोखली साबित हुई हैं । वाल्मीकि बालिकाएं सबसे कम स्कूल आ पाती हैं और सबसे ज्यादा स्कूल छोड़ती हैं । पी. साईंनाथ की यह रपट राजस्थान के विराट नगर, सीकर, नाथद्वारा और जोधपुर जिलों की यात्रा पर आधारित है । यह दलितों पर उनकी शोध-लेख शृंखला का हिस्सा है जो 'हिन्दू' में छपी थी । इसका हिन्दी अनुवाद हमें 'विविधा' (जयपुर) के सौजन्य से मिला है ।

सावित्री के परिवार की स्थिति और जो कुछ भी हो, संपन्न तो नहीं है । पर जब उसने विराटनगर का स्कूल छोड़ा तो इसका कारण पारिवारिक गरीबी नहीं था। साथ पढ़ने वाले बच्चियों और पढ़ाने वाले शिक्षकों ने पंद्रह साल की सावित्री को पढ़ाई छोड़ने पर मजबूर किया ।

''मैं जैसे ही स्कूल में कदम रखती दूसरे बच्चे मुंह बिचकाते। और तभी गाने लगते भंगन आई है, आई है, भंगन आई है ।'' एक फिल्मी धुन की तर्ज पर जोड़े गये इस गीत का एक-एक शब्द अपमान जनक है ।

सावित्री का परिवार दलितों में दलित है । उनका सरकारी नाम है भंगी । इनमें से कई मेहतर जाति के हैं । आज कई खुद को वाल्मीकि कहने लगे हैं। हमारे दशे में अनुसूचित जातियों में भी छुआछूत का प्रचलन है । अत: ये वाल्मीकि समाज के सबसे निचले तबके में आते हैं ।

महिला सफाईकर्मी, जो सूखे पाखाने साफ करती हैं, वे अपने पल्लू नाक पर खींच कर बांधती हैं और उसका किनारा दांतों में दबाती हैं । गंदगी साफ करने के इस काम में यही उनका सहारा है । स्कूल के बच्चे सावित्री को घुसते देख इसी की नकल उतारते। सावित्री बताती है कि वे अपने कॉलर दांत में भींच लेते, और नाक सिकोड़ते । कभी रूमाल से चेहरा ढक लेते । मैं यह देखकर रो पड़ती थी। पर उन पर कोई असर नहीं होता था ।

और माट साब ? क्या वे भी कुछ नहीं करते ?

''माट साब ? वे कौन दूसरे हैं ? हमें कक्षा में सबसे पीछे बैठना पड़ता है, सबके जूतों के पास। हमें कभी उस पट्टी पर बैठने नहीं दिया जाता जिस पर दूसरे बच्चे बैठते । नीची जाति के बच्चे भी हमारा अपमान करते । हम दो-तीन वाल्मीकि लडकियां थीं । जब यह सब बर्दाश्त से बाहर हो गया हमने पढ़ाई छोड़ दी ।''

सावित्री की मां हरबाई अपने समाज की क्रांतिकारी महिला है । उन्होंने नगर परिषद के चुनाव भी लड़े थे, पर वे हार गईं थीं। दलितों में वाल्मीकि समाज छोटा और एकाकी है । अनुसूचित जातियों की कुल संख्या में से उनकी संख्या तीन प्रतिशत से भी कम है ।

जब सावित्री एक बार फिर रोते हुए घर लौटी, हरबाई प्राथमिक शाला के शिक्षक से मिलने गई । ''मैं उस स्कूल की सफाई करती हूं । मुझे बड़ा गुस्सा आया । मैंने पूछा कि इस व्यवहार का मतलब क्या है ? मुझे पता चला कि जितना मैं जानती और सोचती थी, स्थिति दरअसल उससे भी ज्यादा खराब है ।''

आठ साल की पूजा स्कूल की पट्टी पर नहीं अपने बोरे पर बैठती है । ''मुझे एक बार कहा गया कि मैं बैठने के लिए खुद का बोरा लाऊं । उन्होंने कहा कि हम स्कूल की पट्टियों पर नहीं बैठ सकते। उसके बाद मैं अपना बोरा ले जाने लगी ।'' ग्यारह साल की विकलांग रूकमणी के साथ भी यही व्यवहार हुआ ।

नाराज हरबाई से शिक्षक घबरा गए । उन्होंने वादा किया कि आगे ऐसा नहीं होगा। सब बच्चे एक ही पट्टी पर बैठ सकेंगे । सावित्री ने बताया ''माट साब तो इसके बाद से चुप हो गए पर बच्चों ने हमसे कन्नी काट ली ।'' परिणाम यह हुआ कि कई तेज और कुशाग्र बच्चों ने पढ़ाई छोड़ दी । आज अगर वे वापस स्कूल आ भी जाएं तो भी, पढ़ाई पूरी नहीं कर पाएंगे ।

शिक्षक इन सभी बातों को नकारते हैं फिर भी वे इतना जरूर मानते हैं कि अनुसूचित जाति के स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में वाल्मीकि बच्चों की दर सबसे ज्यादा है ।

सरकारी आंकडे बताते हैं, कुल दलित बच्चों में दो तिहाई बच्चे (छह से चौदह वर्ष की आयु के) स्कूल जाते ही नहीं । दलित लड़कियों की स्थिति और भी बुरी है । जो बच्चे दाखिल होते हैं वे भी भारी संख्या में पढ़ाई छोड़ देते हैं । उनकी संख्या दूसरे बच्चों की तुलना में कहीं ज्यादा है ।

अगर आप दलित हैं और दलितों में भी वाल्मीकि जाति की लड़की हैं तो समझ लीजिए कि आप अपनी स्कूली पढ़ाई पूरी कर सकेंगे, इसकी कोई संभावना नहीं है । दलितों के विभिन्न समूहों के अलग-अलग आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं पर लगता यह है कि वाल्मीकि/मेहतरों की स्थिति सबसे खराब है । फिर भी जो महत्वपूर्ण तथ्य है वह यह कि तमाम प्रतिकूल स्थितियों के बावजूद इस जाति के लोग कोशिश करना चाहते हैं ।

सुरेन्द्र कुमार विराटनगर की संस्कृत शाला का दसवीं का छात्र है, ''एक समय था जब मैं सोचता था कि मैं पढ़ाई-वढ़ाई छोड़ दूं और कभी किसी स्कूल में कदम न रखूं । स्कूल का कोई बच्चा मेरे साथ खाता नहीं था । वे अभी भी नहीं खाते पर मेरा जीना उन्होंने हराम कर डाला था । दूसरे दलित बच्चे भी यही करते, पर कुछ कम । उनके साथ भी उंची जाति के बच्चे बुरा व्यवहार करते थे । फिर भी वे यह न सीख सके कि ऐसे अपमान और तिरस्कार से कितनी तकलीफ होती है ।''

जब साक्षरता अभियान शुरू हुआ तो एक केन्द्र वाल्मीकियों की बस्ती में भी खुला । सुरेन्द्र ने बताया ''मैं वहां पढ़ाता हूं । मेरे पास एक रजिस्टर है, एक नामों की सूची भी है, पर दूसरे दलित हमारी बस्ती में आना नहीं चाहते ।''

हमने रजिस्टर देखा और पाया कि केवल वाल्मीकि जाति के छात्रों की उपस्थिति दर्ज थी। अनुसूचित जाति के अन्य छात्रों ने आना बन्द कर दिया क्योंकि वे वाल्मीकि बस्ती में आना नहीं चाहते थे ।

सीकर में शकुंतला और उसकी सहेलियां भी स्कूल छोड़ चुकी हैं । ''स्कूल जाना बेकार था। छुआछूत की समस्या हमारे यहां नहीं थी । सभी बच्चे दलित थे । पर पूर्वाग्रह फिर भी थे। सबसे बड़ी परेशानी यह थी कि शिक्षक की हममें कोई रूचि नहीं थी । हमने जाना बंद कर दिया क्योंकि हमारा दिल और दिमाग वहां लगता ही नहीं था ।''

शकुंतला के मुंह से बात निकली ही थी कि एक उंची जाति की औरत बीच में कूद पड़ी ''तेरा दिमाग क्या तेरी झाड़ू में है ?''

गली के कुछ आगे कुछ नौजवान बैठे थे। उनमें ज्यादातर दलित लड़के ही थे। वे ठाले बैठे समय बर्बाद कर रहे थे। वे हमेशा आने जाने वाली वाल्मीकि लड़कियों को छेड़ते थे । सोलह वर्षीय शकुंतला और चौदह वर्षीय रीना व लच्छी कभी स्कूल लौट पाएंगी उसकी संभावना नहीं हैं । उनका काम और उससे जुड़ी अपवित्रता दलितों के साथ होने वाले भेदभाव को और पैना, और कठोर बना डालती है। पर उनके सामने विकल्प हैं ही नहीं । उनकी मां संतोष कहती है ''मेरे सात बच्चे हैं, दूसरी तरह के काम मिलते ही नहीं, मैं उनका पेट कैसे पालूं ?''

नाथद्वारा के शिक्षक सूरज कुमार, उन चंद लोगों में से हैं जो वाल्मीकि समुदाय के होते हुए भी शिक्षक बन पाए । वे परिस्थितियों में चंद सकारात्मक बदलाव देख पाते हैं । ''तमाम दुर्व्यवहार के बावजूद हमारे यहां कई लड़कियां आठवीं तक पढ़ रही हैं । उसके बाद वे पढ़ नहीं पातीं । शादी और दूसरी समस्याएं आडे आती हैं । जिन परिवारों की स्थिति बेहतर है उनकी बच्चियां दसवीं तक भी पढ़ लेती हैं।''

सरकारी आंकडे बताते हैं, कुल दलित बच्चों में दो तिहाई बच्चे (छह से चौदह वर्ष की आयु के) स्कूल जाते ही नहीं । दलित लड़कियों की स्थिति और भी बुरी है । जो बच्चे दाखिल होते हैं वे भी भारी संख्या में पढ़ाई छोड़ देते हैं । उनकी संख्या दूसरे बच्चों की तुलना में कहीं ज्यादा है ।

छुआछूत तो बरती ही जाती है। जब शिक्षकों को पानी चाहिए होता है तो वे ऊंची जाति के बच्चों से पानी मंगवाते हैं । बच्चे नलके से पानी पीते हैं । शिक्षकों के लिए भरकर रखे मटके में से केवल ऊंची जाति के छात्र-छात्रा ही पानी पीने की हिम्मत कर सकते हैं।

''जब मैं खुद पढ़ता था, या बाद में जब मैं पढ़ाने लगा, तब सालों तक मेरे साथ पढ़ने या पढ़ाने वाले मुझे अपने घर खाना खाने नहीं बुलाते थे । हम थड़ी पर साथ-साथ चाय जरूर पी लेते थे, पर इससे आगे नहीं बढ़ते । हमारे घरों में जब शादियां होतीं तो ऊंची जाति के सहकर्मी आते हैं, भेंट थमा कर गायब हो जाते हैं । बोतलों में बंद शर्बत शायद पी भी लें पर खाना कभी नहीं खाते । उनकी शैली है, उपहार पकड़ाओ और छू हो जाओ।''

जोधपुर की दो मेहतर बस्तियों में, राजस्थान में इस जाति के सबसे पढ़े लिखे लोग मिलते हैं । शिक्षा विभाग में कार्यरत रामंचद्र बरेसा बताते हैं कि ''प्राथमिक स्तर पर अस्सी प्रतिशत बच्चे नामांकित हैं । माध्यमिक स्तर तक आते-आते उनमें से बीस प्रतिशत पढ़ाई छोड़ देते हैं । पढ़ाई शुरू करने वाले हर सौ बच्चों में तीस ही हाई स्कूल पार करते हैं । इन तीस में लगभग पंद्रह लड़कियां हो सकती हैं ।''

पंद्रह लाख की आबादी वाले जोधपुर शहर में सत्तर हजार मेहतर हैं । उनकी बेहतर शैक्षणिक स्थिति उन्हें दूसरे स्थानों पर रहने वाले इसी समुदाय के लोगों की तुलना में अधिक सुविधाएं दे पाती हैं । वे अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं । जब ऊंची जाति के लोगों ने उसे सताया तो राम कुमार ने खुद भी ऐसी लड़ाई लड़ी। ''फलौदी और शेरगढ़ तहसीलों में छात्र तो छात्र, दलित शिक्षकों तक से दुर्व्यवहार होता है । शिक्षकों के कमरे में या कक्षाओं में उनके लिए कुर्सियां नहीं होतीं । जबकि शेष सभी शिक्षकों की कुर्सियां हैं ।''

दलित सशक्तिकरण के लिए सक्रिय श्यामजी कल्ला बताते हैं ''हम अब संगठित हैं, और लड़ते हैं। हमारी बस्ती में इतना हौसला है।'' समाज सुधारक समूहों ने भी इस बस्ती में शिक्षा प्रचार काकाम किया था । जोधपुर की दूसरी मेहतर बस्ती के एक व्यक्ति विश्वविद्यालय के उप-कुलपति भी बन पाए । ''हमारी बस्ती में छह राजपत्रित अधिकारी हैं, तीन इंजिनियर हैं और छह डॉक्टर हैं।''

श्यामजी की बस्ती के बाबूलाल पण्डित पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्नातकोत्तर पढ़ाई की । वे बताते हैं ''उन लोगों में शिक्षा सबसे कम है जो मैला ढोने का काम करते हैं ।''

इस बस्ती के जगदीश कल्ला का कहना है ''लोग यह काम छोड़ रहे हैं । तकरीबन पचास लोगों ने दुकानें कर ली हैं । उनकी छोटी-छोटी दुकानें हैं । फल, किराना, सब्जी, ऑमलेट के ठेले। जैसे जैसे शहर बढ़ता जा रहा है लोगों की जातिगत पहचान कुछ धुंधली पड़ती जाती है । लोगों को दुकान मालिक का पता नहीं होता । वे चीजें खरीदते हैं पता चलने पर कई लोग खरीदना बंद भी कर देते हैं । हमारी हालत और भी सुधर सकती हैं, पर हमें बैक से कर्ज नहीं मिलता । हमें दरअसल कुछ भी नहीं मिलता ।''

अधिकांश लोगों का मानना है कि नौकरियों में आरक्षण का दलितों पर खूब असर पड़ा है। इसलिए वे अपने समुदाय के लिए एक स्पष्ट कोटा चाहते हैं । श्यामजी यह बात स्वीकारते हैं पर उनका मानना है कि कई राजनैतिक लड़ाइयां भी लड़नी होंगी । ''हम संगठित न हों तो कुछ भी नहीं होगा।'' जोधपुर में एक शुरूआत हो सकी है। यहां अधिक लड़कियां पढ़ पा रही हैं पर सावित्री आर उसकी बहनें राजस्थान के दूसरे हिस्सों में पढ़ पाएं ऐसी स्थिति आने में वक्त लगेगा । उनके माता-पिता पढ़े लिखे नहीं हैं। ना ही वे संगठित हैं । ◆